Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 2 | Issue 4 | (Oct – Dec 2025)

# "ढलती सांझ का सूरज" में किसान जीवन की त्रासदी

**सुशील महतो**

**सारांश**

इसमें किसानों की त्रासदी की विभिन्न घटनाओं सहित उनकी समस्याएँ और समाधान दिखलाई पड़ते हैं। एक तरफ समाज और सरकार की नीतियों के कारण किसान वर्ग आज आत्महत्या जैसे जघन्य अपराध करने को मजबूर है मानो सरकार की यह नीति रह गई हो: "बाज़ार आज़ाद और किसान बर्बाद।" वहीं दूसरी तरफ अविनाश के माध्यम से यह देखने को मिलता है कि किस प्रकार पश्चाताप की आग में जलकर अविनाश किसानों की मदद करने को तत्पर है। वह किसानों की समस्याओं को उनके साथ रहकर देखता है और उनके समाधान का पूरा प्रयास करता है। वास्तव में यदि हम किसानों की बुनियादी समस्याओं का समाधान करें तो किसान भी मुख्य धारा से जुड़ सकते हैं, साथ ही उनकी आमदनी भी बढ़ सकती है। यह बात हमें नकदी फसलों सहित विभिन्न फसलें उगाने में किसानों की बढ़ती रुचि तथा उद्यमी महिलाओं द्वारा बनाए गए जैविक खाद की बढ़ती माँग से पता चलती है, जो महिलाओं की आर्थिक शक्ति को भी सशक्त करती है। व्यक्ति यदि किसी कार्य को ठान ले तो कोई भी कार्य असंभव नहीं होता यह हमें अविनाश द्वारा विभिन्न गाँवों में किए गए कार्यों से स्पष्ट होता है। परंतु विडंबना यह है कि सरकार की उदासीनता एवं बाज़ारवाद के कारण किसानों के जीवन में केवल डूबते हुए सूर्य की उदासी ही छाई रहती है।

**बीज शब्द –** आधुनिक, त्रासदी, विरोधाभास, पलायन, जिजीविषा, सभ्यता, चकाचौंध, संस्कृति, सरोकार, मुआवज़ा, व्यर्थ।

## भूमिका

'ढलती साँझ के सूरज' में मधु कांकरिया ने किसान के त्रासद जीवन का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। वे स्वतंत्र भारत में किसान की दयनीय दशा को दिखाती हैं कि आज़ाद देश में, जहाँ खेती भारतीय संस्कृति और पहचान का प्रतीक रही है, वहीं आज किसान आत्महत्या करने को मजबूर हो रहे हैं। आज भी किसान मुख्य धारा से अलग जीवन यापन करने के लिए विवश हैं। उनकी समस्याओं को सुनने या समझने में किसी की रुचि नहीं दिखती मानो किसान के लिए सरकार की आत्मा ही मर गई हो। देश में आधुनिकता और प्राचीनता के दो रूप समानांतर रूप से चलते दिखाई पड़ते हैं एक तरफ पूँजीपतियों का खेल और दूसरी तरफ किसानों का शोषण। आज कृषि की अवस्था इतनी दयनीय हो गई है कि युवा पीढ़ी इससे दूरी बनाना चाहती है। वे विदेश जाने या नौकरी करने को प्राथमिकता देते हैं क्योंकि किसान की समस्याएँ केवल एक नहीं, अनेक हैं। समाज, परिवार, और जीवन के हर स्तर पर उनकी घुटन स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। किसानों के प्रति एक गहरा विरोधाभास व्याप्त है एक ओर सारा संसार किसान की कमाई से जीवित है, तो दूसरी ओर वही किसान भूखा सो जाता है।

इस उपन्यास में किसान की जिजीविषा, किसान से मज़दूर बनने का दर्द, पलायन की प्रवृत्ति, कर्ज़ की समस्या, किसानों के स्वाभिमान पर चोट, खाद के ऊँचे दाम, सिंचाई की कमी, खुले बाज़ार की मार, समर्थन मूल्य का अभाव, कर्ज़ माफी में पात्रता की समस्या, गाँवों की सड़क व यातायात की दुर्दशा, सरकार की उदासीनता, मीडिया की अनदेखी, तथा विदेशी प्रभाव से बिगड़ते ग्रामीण जीवन जैसे अनेक मुद्दे सामने आते हैं।

कांकरिया जी ने इस उपन्यास में देशप्रेम के साथ-साथ कृषक जीवन की त्रासदी को उजागर किया है। वे दिखाती हैं कि भारत में किसान का चेहरा वास्तव में वह आईना है जिसमें सभ्यता का चेहरा झलकता है।[1] परंतु इसी सभ्यता के चेहरे के पीछे छिपा है कृषक जीवन का दर्द, जो दृष्टिगोचर नहीं होता। मराठवाड़ा के जालना ज़िले में

पारतुल से 10 किलोमीटर दूर बाबुलतारा गाँव में किसानों की हालत इतनी दयनीय है कि वे आत्महत्या जैसे जघन्य अपराध तक करने को मजबूर हैं। इन घटनाओं से उनके परिवार बिखरते जा रहे हैं और वे अभावों में जीवन जीने को विवश हैं। यही स्थिति मानसी जी की गोद ली हुई पुत्री शोभा में परिलक्षित होती है, जिसके पति दिलीप उद्राव पर "साढ़े चार लाख का कर्ज़ था, जो मेधा बैंक प्राइवेट लिमिटेड से 13% ब्याज पर लिया गया था।" [2] कर्ज़ के बोझ और फसल न होने के कारण उसे आत्महत्या करनी पड़ी।

हम 'गोदान' उपन्यास में भी देखते हैं कि किस प्रकार किसान जीवन संघर्ष से गुजरता है। रामविलास शर्मा के शब्दों में "गोदान की मूल समस्या ऋण की समस्या है... गोदान लिखकर उन्होंने किसान की उस समस्या पर प्रकाश डाला जो आए दिन उनके जीवन को सबसे ज्यादा स्पर्श करती है।" [3]

ग्रामीण जीवन का यथार्थ यह दर्शाता है कि किस प्रकार आज गाँवों के लोग अभावों में जी रहे हैं। मामा के हाथों से कटा पपीता भी उन हाथों की कहानी कहता है जो अभावों में पले हैं। उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य रह गया है पेट भरना। गाँव की दरिद्रता इस कदर है कि "एक ही कमरे में कितनी सारी दुनिया! एक कमरे की कथा में कितनी सारी उपकथाएँ! यही है विश्वशक्ति का सपना देखने वाले भारत की तस्वीर!" [4] किसान और ग्रामीण लोग केवल साँस चलने को ही जीवन मान चुके हैं। अशिक्षा और अभाव ने उनके जीवन को इस कदर जकड़ लिया है कि वहाँ ज़िंदगी और गंदगी साथ-साथ चलती है।

इस उपन्यास में आधुनिकता और परंपरा दोनों का विरोधाभास झलकता है। एक ओर मुंबई (पूर्व में बंबई) की चकाचौंध, व्यापार और विलासिता से भरा आधुनिक भारत है, तो दूसरी ओर गाँव में किसान का बदहाल जीवन। कर्ज़ से त्रस्त एक किसान जब ज़हर खाने को मजबूर होता है, तो यह उसके टूटे हुए आत्मबल का प्रमाण है। बाला साहब जब अविनाश को दिखाते हैं "वह देखिए खेत के उसी कोने में खड़े उस पेड़ के नीचे खाया था अरुणागिरी जी ने सल्फास (जहर)। खेत के उस कोने में लिखी है आधे हिंदुस्तान की कहानी।" [5] यह संवाद किसानों की विडंबना को हृदयविदारक रूप में प्रकट करता है।

बैंकों की वसूली प्रक्रिया ने किसानों की सामाजिक प्रतिष्ठा को तार-तार कर दिया है, जिसके कारण आत्महत्या ही उनका अंतिम सहारा रह गया है। पूँजीवाद और खुले बाजार का प्रभाव इतना बढ़ गया है कि किसानों का साँस लेना भी कठिन हो गया है। उनसे कच्चा माल सस्ते दामों में लिया जाता है और वही माल कई गुना महंगे दामों में बेचा जाता है। "90 के दशक के बाद से आपका खुला बाजार क्या आया, बाजार का चरित्र ही बिगड़ गया गांव का ढांचा ही चरमरा गया। वह ग्रामीण संस्कृति ही चौपट हो गई।" [6]

संजीव के 'फाँस' उपन्यास में भी किसानों की आत्महत्या और खेती छोड़ने की समस्या का मार्मिक चित्रण मिलता है। स्थिति इतनी भयावह है कि "1997 से 2006 तक यहाँ 15 हज़ार किसान आत्महत्या कर चुके थे, और पूरे देश में यह संख्या ढाई लाख तक पहुँच गई थी।" [7] किसानों के साथ यह विडंबना है कि अब उनका ज़िंदा रहना ही उपलब्धि बन चुका है। जहाँ 1967 में किसान "ज़मीन उसकी, हल जिसका" का नारा लगाते थे, आज वही दृश्य "पैसा जिसका, शासन उसका" में बदल गया है।

सरकारी तंत्र की विफलता इस उपन्यास में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। सरकारें मुख्य सड़कों का निर्माण तो करती हैं, पर किसानों के गाँव तक सड़क पहुँचाने में पूँजी की कमी का बहाना बनाती हैं। महात्मा गांधी के शब्दों में "हमें केवल किसान ही मुक्ति दिला सकते हैं वकीलों, डाक्टरों या धनी जमींदारों के बूते की बात नहीं हैं।" [8] परंतु आज की सरकारों और पूँजीपतियों को किसानों की समस्या से कोई सरोकार नहीं है।

कर्ज़ माफी केवल दिखावा बनकर रह गई है, क्योंकि पात्रता की शर्तों के कारण कई किसान इससे वंचित रह जाते हैं। सबसे बड़ी विडंबना यह है कि किसान को केवल पुरुष माना जाता है, जबकि सच्चाई यह है कि महिलाएँ

भी किसान होती हैं। "सुधामणि एक औरत थी, इसलिए कोई उसे किसान नहीं मानता था एक औरत किसान की पत्नी हो सकती है, किसान नहीं।" [9]

किसान कदंब की कहानी इस त्रासदी को और गहराई देती है। जब वह अपने उत्पाद को बेचने बाजार जाता है और उचित मूल्य न मिलने के कारण वापस लौटता है, तो साहूकार उस पर कर्ज़ लौटाने का दबाव बढ़ा देते हैं, जिससे वह आत्महत्या के लिए मजबूर हो जाता है। सरकारी तंत्र की भ्रष्टता इस वाक्य से स्पष्ट होती है "पुलिस तहकीकात कर रही है और यह सिद्ध करने में लगी है कि यह आत्महत्या कर्ज के चलते नहीं वरन् घरेलू क्लेश के चलते हुई थी इसलिए वह कर्ज माफी का सुपात्र नहीं।" [10] मौत का यह सिलसिला इस कदर बढ़ गया है कि किसानों की आत्महत्याओं की खबरें सरकार के लिए केवल हवा-पानी की तरह सामान्य हो गई हैं।

**किसान जीवन की त्रासदी**

किसान जीवन की त्रासदी आज इस हद तक बढ़ गई है कि मानो किसान के जीवन का कोई मोल ही न रह गया हो। वह अभावों में इतना तल्लीन हो गया है कि बड़ी से बड़ी समस्या में भी स्वयं को समायोजित (एडजस्ट) कर लेना चाहता है। ऐसी ही घटनाएँ हमें बाबुलतारा, बलखड़े, रजनी और कामथड़ी गाँव के किसान सुरेंद्र जी के जीवन में दिखाई देती हैं। इसके साथ ही समाज की सच्चाई भी उजागर होती है किस प्रकार किसान यह मान चुके हैं कि कानून उनके लिए केवल छलावा है। मानो "कानून तो मूक दर्शक बना हुआ है, न्याय भ्रम है और सच्चाई कोमा में है इस देश में।" [11] समाज की बदसूरती इतनी बढ़ गई है कि "कर्ज़ माफी बड़े लोगों के लिए है और किसान के लिए फाँसी।" [12]

भूख किस प्रकार आक्रोश को नपुंसक बना देती है, इसका जीवंत उदाहरण चीकू की मृत्यु पर देखने को मिलता है। चीकू के मित्र रवि आदि लोग अपने मित्र को मुआवज़ा दिलाने तक की आवाज़ नहीं उठा पाते, न ही उसके विरुद्ध कोई प्रदर्शन कर पाते हैं। भूख और विवशता ने उन्हें ठंडा और जड़ बना दिया है। कृषक जीवन से पलायनता ने उनमें निष्क्रियता (जड़ता) पैदा कर दी है। अब वे यह मान बैठे हैं कि "गरीबों के लिए कानून इस देश में भ्रम है और सत्य कोमा में है।" [13]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'ढलती साँझ के सूरज' का प्रमुख विषय किसान जीवन की त्रासदी है। यहाँ किसान वर्ग का जीवन दिन-प्रतिदिन बदतर होता जा रहा है। हर रात उन्हें कभी कर्ज़ की, तो कभी भविष्य की चिंता सताती है; सुबह उठते ही वही सवाल "अब क्या होगा?" खेत, पानी और कर्ज़ के अलावा उनके जीवन में कोई दूसरी बात नहीं रह गई है।

सरकार की दुरनीतियाँ, किसानों के प्रति अनदेखी, प्रशासनिक तंत्र की लचरता, पूँजीवाद को बढ़ावा, फसलों के समर्थन मूल्य का अभाव, किसान कल्याणकारी योजनाओं की कमी, सस्ते कर्ज़ की अनुपलब्धता, बैंकों की जटिल प्रक्रियाएँ, सूदखोरों की लोलुपता, खाद्य सामग्री की ऊँची दरें, सूखा और नहरों की कमी, गाँवों में पक्की सड़कों का अभाव तथा खेती को प्रोत्साहन की कमी ये सभी समस्याएँ किसानों को इस कदर प्रभावित करती हैं कि वे अपने अनमोल जीवन को समाप्त करने तक को विवश हो जाते हैं।

सूदखोरों द्वारा किसानों को तेज़ और अधिक फसल उत्पादन का लालच उन्हें कर्ज़ के जाल में फँसा देता है, और अंततः वही लालच उन्हें मृत्यु के करीब पहुँचा देता है। भारत में अधिकांश लोग कृषि पर निर्भर हैं, फिर भी किसानों की समस्या से आज किसी भी मीडिया या शासन को कोई सरोकार नहीं है। आज़ाद भारत में लोकतंत्र की मरी हुई सभ्यता की गंध आती है।

वास्तव में, यदि हमें किसान की समस्या का समाधान करना है, तो हमें किसान को उसकी आँखों से देखना और उसके जीवन को समझना होगा। क्योंकि जब तक हम उसकी नब्ज़ नहीं पकड़ते, तब तक उसकी पीड़ा का तापमान नहीं समझ सकते। ठीक इसी प्रकार, किसान के प्रति भी हमें यही संवेदनशील दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। 'ढलती साँझ के सूरज' की तरह हमें भी उन किसानों और मज़दूरों को बचाना होगा जो उम्र से पहले ढलते जा रहे हैं वरना सचमुच, सब कुछ व्यर्थ हो जाएगा।

**संदर्भ एवं सूची**

1. मधु कांकरिया, ढलती साँझ का सूरज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2022, पृष्ठ – 47
2. वही, पृष्ठ – 49
3. डॉ. रामविलास शर्मा, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष – 2014, पृष्ठ – 96
4. मधु कांकरिया, ढलती साँझ का सूरज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2022, पृष्ठ – 50
5. वही, पृष्ठ – 60
6. वही, पृष्ठ – 65
7. फाँस – संजीव, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण – 2015, पृष्ठ – 66
8. महात्मा गांधी के भाषण का अंश, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 1916
9. मधु कांकरिया, ढलती साँझ का सूरज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2022, पृष्ठ – 53
10. वही, पृष्ठ – 133
11. वही, पृष्ठ – 134
12. वही, पृष्ठ – 135
13. वही, पृष्ठ – 190